गरीब बच्चों की शिक्षा

❑ नरेश यादव

दुनियां भर में अमीरों की शिक्षा में भले ही कितनी ही 'गुणात्मक असमानता' हो लेकिन 'गरीबों के लिए एक समान' शिक्षा- व्यवस्था का प्रावधान है । विशेषकर तीसरी दुनियां के देशों में शिक्षा की दुरावस्था को लेकर कमोबेश कोई फर्क नजर नहीं आता । समीक्ष्य पुस्तक में वर्णित चार देशों के गरीब बच्चों की शिक्षा भारत के सामान्य स्कूलों से विशेष भिन्न नहीं है । क्या सत्ता का गरीब तबके के प्रति नजरिया और देश की वित्तीय स्थिति शिक्षा-व्यवस्था के निर्धारण को प्रभावित करता है - इस समीक्षा की तह में कहीं यह सवाल भी छुपा है ।

शिक्षा की दृष्टि से तीसरी दुनिया के अधिकतर देश विचित्र संकट के दौर से गुजर रहे हैं । स्कूली शिक्षा की स्थिति ज्यादा खराब है । गुणवत्ता विहीन शिक्षा और अनुतीर्ण होने वाले छात्रों की भारी संख्या भौतिक व मानव संसाधनों की बर्बादी का संकेत देते हैं । ग्रामीण व शहरी परिवेशों में रहने वाले गरीब बच्चों को कितनी ही समस्याएं आती हैं जिनकी खबरें माता-पिता तक भी नहीं पहुंच पाती (यथा इन बच्चों पर लगे बिल्ले जैसे चोर, चोरनी, गंदी आदि) ।

गरीब बच्चों के लिए आम शिक्षण किस तरह अपमानजनक होता है, बिट्रिस एवालॉस की किताब 'गरीब बच्चों की शिक्षा' इसका ब्यौरा पेश करती है । समाज की व्यापक बनावट, अध्यापक की पृष्ठभूमि और उसकी समझ के साथ-साथ शिक्षण की दैनिक छवि अपने आप उस सूक्ष्म बर्बरता को जन्म देती है जिसे गरीब व अशिक्षित परिवारों से आने वाले लड़के, लड़कियां सहते हैं । निश्चय ही गरीबी, बाल-मजदूरी, माता-पिता की लाचारी और लड़कियों को लेकर फैले पूर्वाग्रह समाज में उत्पीड़ित वर्गों में शिक्षा के प्रसार को प्रभावित करने वाले तत्वों में शामिल है । किंतु स्कूल के वातावरण, पाठ्यक्रम और अध्यापन में रचे-पचे हतोत्साहक तत्व भी बेहद महत्वपूर्ण हैं। निर्धन बच्चे उच्च वर्ग के जीवन मूल्यों में दीक्षित किए जाने के कारण असफल रहते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में - बोलीविया, चीली, वेनेजुएला, कोलंबिया- इन चार देशों के 16 विद्यालयों का वर्णन प्रस्तुत किया गया है । ये विद्यालय नगरीय और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों के निचले सामाजिक आर्थिक समुदायों वाले इलाकों में स्थित थे। इसमें स्कूली समस्याओं का वर्णन किया है जिनमें मुख्य समस्याएं निम्न हैं :

छोटे कमरे अर्थात जिनमें पर्याप्त जगह नहीं है इसलिए बच्चों को पढ़ने के लिए बारी-बारी सीटों पर बैठना पड़ता है । कमरों में पर्याप्त रोशनी का अभाव, पुस्तकों का अभाव, खेलने के मैदान का अभाव है । इसमें सर्वेक्षण के दौरान प्रश्नकर्ता ने अध्यापक, छात्र और अभिभावक से सवाल पूछे हैं तथा स्वयं ने अध्यापन की शैली का अवलोकन किया है जिससे अध्यापक व छात्र के बीच संबंध का, अभिभावक व अध्यापक के बीच संबंध का और छात्र व अभिभावकों के बीच के संबंध का ज्ञान होता है ।

गरीब बच्चों की मुख्य समस्यांए हैं : ये बच्चे सुबह छात्र और बच्चे होते हैं लेकिन शाम को मजदूर । कुछ अपने माता-पिता के साथ खेत में काम करवाते हैं तो कुछ सामान बेचने का काम करते हैं अर्थात् ये कामकाजी बच्चे हैं । स्कूल में पढ़ाई गयी किताबों को दोहराने का इनके पास वक्त नहीं होता । जीवन की बुरी स्थितियां इनकी सेहत को प्रभावित करती हैं । अधिकांश बच्चों में कुपोषण के चिन्ह दिखाई देते हैं हालांकि इनके माता-पिता इनको तीन बार भोजन देने का प्रयास करते हैं ।

भाषा की समस्या भी होती है । ये बच्चे अपने घर एमारा बोली (भाषा) का प्रयोग करते हैं जबकि स्कूल में स्पेनी भाषा का प्रयोग करना होता है । इनके अभिभावक निरक्षर होने की वजह से पढ़ाई में इनकी मदद करने में असमर्थ होते हैं ।

इनके माता पिता सोचते हैं कि स्कूल अच्छे हैं और ये अपने बच्चों को स्कूल भेजने का पूरा प्रयास करते हैं । इनका मानना है कि विद्यालय उनके बच्चों में कुछ कुशलताएं विकसित करने के अवसर देंगे और ये हमारी तरह कठोर परिश्रम करने से बच जायेंगे।

बच्चों को स्कूल पहुंचने के लिए बसों की लाइन में खड़ा होना पड़ता है इसलिए वे स्कूल देर से पहुंचते हैं । चिली का एक छात्र सुबह पांच बजे उठता है और स्कूल जाने की तैयारी शुरू कर देता है । वह 8 बजे स्कूल पहुंचकर स्कूल में ही नाश्ता करता है।

छात्र का कहना है कि वह स्कूल पहुंचने तक थक जाता है । फिर भी बच्चों को आदेश होता है कि स्थिति से वे स्वयं निबटें और समय पर कक्षा में आएं ।

बाजार के दिन अनेक बच्चों को घर पर रोक लिया जाता है ताकि वे अपना सामान बेचने में माता-पिता की कुछ सहायता करें ।

अस्थिर (आप्रवासी) परिवारों के बच्चों में बैचेनी और आक्रामता के लक्षण नजर आते थे । वे स्कूल से छूटते ही शोर मचाने लगते थे । शिक्षकों को ये बच्चे दब्बू और भोंदू भी लगते थे । ये बच्चे ऐसी अध्यापिकाओं को पसंद करते थे जो उन्हें प्यार करती थीं । जो उन्हें डांटती थी वे उन्हें खराब बताते थे । जिनके पारवारिक जीवन में स्थायित्व था, वे बच्चे स्फूर्ति वाले और रचनात्मक कार्य करने वाले थे । अर्थात पारिवारिक परिस्थितियां भी बच्चों को बहुत अधिक प्रभावित करती हैं ।

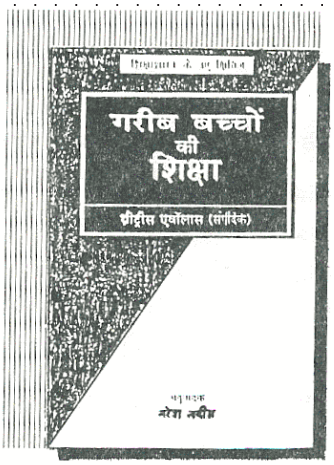

गरीब बच्चों की शिक्षा

बिट्रिश एवॉलास

अनुवादक : नरेश नदीम

शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े और आर्थिक दृष्टि से अभावग्रस्त तीसरी दुनिया के देशों के अध्यापकों, प्रशिक्षकों, प्रशासकों और अभिभावकों के लिए यह पुस्तक बहुत उपयोगी साबित होगी। इसको पढ़ने के बाद उनको अपने आचार-व्यवहार के विषय में आलोचनात्मक विचार करने और यह जानने में मदद देगी कि छात्रों के मानसिक विकास के लिए इसमें किस प्रकार के सुधार की जरूरत है । मूल्य : रुपये 200/-

ग्रन्थ शिल्पी प्रकाशन, नयी दिल्ली

प्रस्तुत पुस्तक में अध्यापक के स्वयं के अनुभव व छात्रों के साथ व्यवहार को बताया है । कुछ अध्यापकों को अध्यापन कार्य पसंद था लेकिन कुछ को नहीं था । अध्यापन कार्य चारों देशों में लगभग समान था । सर्वप्रथम अध्यापिका बच्चों को चुप करवाती फिर हाजिरी लेती । उसके बाद पढ़ाना शुरू करती । अधिकांश अध्यापक उस सरकारी पाठ्य-विवरण से दुखी थे जिसका अनुसरण उन्हें करना पड़ता था । इसे वे हवाई, सड़ियल व अप्रासंगिक समझते थे ।

चीली में लड़कियों की अपेक्षा लड़कों से अलग किस्म का व्यवहार किया जाता था । जैसे लड़कों से अध्यापिका सवाल पूछती थी और लड़कों को अधिक प्रतिभाशाली समझती थी । एक दूसरी कक्षा में लड़कों व लड़कियों को अलग श्रेणी में बांट रखा था । लड़कियां भी सवाल पूछने के लिए लड़कों को मध्यस्थ बनाती थीं ।

अभिभावकों का मानना था कि बच्चों को स्कूल जाना चाहिये ताकि वो कुछ बन जायें और हमारे जैसे कठोर जीवन जीने से बच जाये ।

कुछ अभिभावकों ने स्कूल से बच्चे का नाम बीच में ही कटा लिया था । ये बच्चे गिनती भी नहीं सीख पाये । एक माँ का कहना था बच्चे समय समय पर पैसे मांगते रहते हैं ।

प्रस्तुत पुस्तक में सीखने में बच्चों की सफलता और असफलता की व्याख्या भी की गई है ।

विद्यालय में अनुत्तीर्ण होने वाले बच्चे किसी की जिम्मेदारी नहीं होते, ऐसा एक अध्यापक को कहते सुना गया। असफलता की जिम्मेदारी न विद्यालय लेता है न अध्यापक और न अभिभावक। अक्सर असफलता के लिए बच्चे या बच्ची को दोषी ठहराया जाता है या फिर उन सामाजिक समस्याओं को बतलाया जाता है जो धरती पर स्वर्ग के उतरने पर ही हल हो सकती हैं ।

लेकिन अनुसंधानकर्ताओं के अनुसार बच्चा अधिगम और व्यवहार के बारे में विद्यालय के तकाजे पूरे नहीं कर पाता है और अंततः परीक्षा में असफल बताकर या एक ही कक्षा में पुनः पढ़ने को विवश कर व्यवस्था उसे दंडित करती है । अध्यापकों का मानना है कि शैक्षिक असफलता की जिम्मेदारी आम तौर पर बच्चे की पारिवारिक स्थिति से जुड़ी होती है । अशिक्षित परिवार अपने बच्चों की अधिगम संबंधी आवश्यकताओं से जुड़ा कोई कार्य नहीं करते । ऐसे परिवार सारी जिम्मेदारी विद्यालय पर डाल देते हैं । बच्चे के काम में मदद नहीं करते और विद्यालय की अपेक्षाओं को पूरा नहीं करते। ये परिवार टूटे हुए या गंभीर सामाजिक-आर्थिक समस्याओं से ग्रस्त होते हैं ऐसी स्थिति में बच्चे को अपनी चिन्ता स्वयं करनी पड़ती है ।

सेन्योरा रोजा एक अध्यापिका है। सेन्योरा के मन में पुरस्कार पाने वाले छात्रों के प्रति स्नेह नहीं था क्योंकि उनका मानना था कि उन्हें बुद्धि और स्मरणशक्ति की दृष्टि से बेहतर शुरुआत का लाभ

मिला है । कठिनाईग्रस्त बच्चों के बारे में सेन्योरा रोजा की व्याख्या में यह चेतना शामिल थी कि बच्चे की असफलता के लिए उसकी कमजोर पारिवारिक स्थिति निर्णायक नहीं है । उनका विश्वास था कि हम बच्चों से स्नेह तथा उनकी अधिगम संबंधी आवश्यकताओं और व्यक्तित्व के गुणों पर विचार करके असफलता को दूर कर सकते हैं ।

गरीब बच्चों के लिए शिक्षा के संबंध में बिट्रिश एवॉलास की यह पुस्तक हमें कुछ महत्वपूर्ण बातें सुझाती है ।

हमें 'सेन्योरा रोजा' की तरह के अध्यापकों (निर्धन परिवेश के निम्न शैक्षिक स्तर के बहुसंख्यक अध्यापक) के बारे में उनकी चिंतनशैली, व्यवहारिक दर्शन और विचारधाराओं तथा उनके निर्माण के तरीकों के बारे में और अधिक जानकारी पानी होगी ।

यह आवश्यक है कि हम सेन्योरा रोजा जैसे अध्यापकों से उनकी सामग्री के नमूने, उनकी अंत: क्रियाओं के उदाहरण तथा उनकी तकनीकों की जानकारी जमा करें ताकि अध्यापक प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों की पाठ्यपुस्तकों के लिए दृष्टांत मिल सकें ।

हमें ऐसी सेवाकालीन कार्यशालाओं का आयोजन करना होगा, जहां पाठ्य-चर्चा, सामग्री, अध्यापन शैली की छानबीन हो।

हमें यह सुनिश्चित करना होगा कि अध्यापन में सुधार के लिए जो कुछ उपलब्ध है उस पर विश्वसनीय और व्यावाहारिक कार्यवाही हो ।

प्राथमिक कक्षाओं में विभिन्न विषयों से संबंधित कोने भी बनाए जाने चाहिएं जिनमें जीव-जंतुओं और पेड़-पौधों के नमूने और पोस्टर होने चाहियें ।

अगर अध्यापक-अध्यापिका एक पाठ तैयार और विकसित करेंगे तो उन्हें निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिये :

- बच्चों की सामान्य बुद्धि,
- यथार्थ के सांस्कृतिक अधिग्रहण की वे विधियां जो बच्चों को पहले से प्राप्त हैं ।
- बच्चों की ठोस जीवन स्थितियां,
- विषयों के बुनियादी तत्व और
- अंत-तत्वों की रचनात्मक महत्ता । ◆

भारतीय शिक्षा नीति पर औपनिवेशिक छाया

भारत में प्रचलित शिक्षा नीति हमेशा से चर्चित रही है। विभिन्न छात्र संगठनों, राजनेताओं, शिक्षाविदों और बुद्धिजीवियों ने इस शिक्षा नीति एवं व्यवस्था पर व्यापक टीका टिप्पणी की है। प्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रीय शिक्षा नीति बनी, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान परिषद, प्रांतीय शिक्षा अनुसंधान परिषद, डीआईईटी, दून स्कूल की शैली के नवोदय विद्यालय भी बनाये जाते रहे हैं पर शिक्षा के मूलभूत ढांचे में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। स्वतंत्रता प्राप्ति के 43 वर्षों के बाद भी हम यह सोचने को मजबूर हैं कि कदाचित हमारी शिक्षा नीति की कमजोरी ही भारत में अनिश्चितता के इस वातावरण को बनाने के लिए जिम्मेदार है।

मुट्ठी भर गोर शोषकों की मानसिकता से ओतप्रोत, उनकी प्रशासनिक क्षमता को बढ़ाने के उद्देश्य से प्रेरित शासकों एवं शासितों के मध्य सेतु का कार्य करने के लिए सन् 1813 में लार्ड मैकाले ने बाबुओं (क्लर्क) का एक वर्ग बनाने के उद्देश्य से आज की शिक्षा नीति को बनाया था। पुरानी जंग खायी मशीन पर रंग रोगन लगाने की तरह हमारी शिक्षा नीति ने भी कई जामे बदले पर इसका हुलिया न बदला। अगर ऐसा न होता तो :

1. वर्तमान शोषण ग्रस्त समाज अब तक अपरिवर्तित नहीं रहता।
2. हर शिक्षित व्यक्ति वर्तमान व्यवस्था की काल सापेक्ष प्रासंगिकता छोड़कर इस व्यवस्था की प्रशंसा का तोता रंटत न रहता।
3. शिक्षितों का सुविधाभोगी वर्ग वृहत्तर समाज से स्वयं को काटकर अल्पसंख्यक वर्ग की तरह व्यवहार न करता।
4. उत्पादक कार्यों से कटकर स्वयं शिक्षित वर्ग आम जनता से पृथक न होता।
5. व्यवस्था संचालन के सुविधार्थ बनाया गया दब्बू-वर्ग उपनिवेश की समाप्ति के 43 वर्ष बाद भी औपनिवेशिक मानसिकता से ग्रस्त न होता।
6. देश की जन-कल्याणमूलक भूमिका के विज्ञापन पर किए जाने वाले व्यय से भी कम खर्च शिक्षा हेतु न किया जाता।

❑ शंकर गुहा नियोगी
'संघर्ष और निर्माण' से